सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनींद्र, करुणामय, कबीर सुरति योग संतायन, धनी, धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध, गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीसर्वज्ञसागर प्रारम्भः

धर्मदास वचन-चौपाई

कहै धर्मदास सुनो गुसाईं। सकल मता तुम कहा समुझाई ॥
वरनि भेद कह्यो बहुमानी। सर्व ज्ञान तुम कही बखानी ॥
सब को सार कहो समुझायी। भिन्न २ मोहि देहु लखायी ॥
सावन भादो वरसे मेहा। एते शब्द तुम कथे विदेहा ॥
बहुत अगम है मता तुम्हारा। कहँ लगि गम्य करै संसारा ॥
नर देही कछु गम्य न जाने। जो कछु सुनै सोई अनुमाने ॥
तहँको भेद कहँ मूरख पावे। बिनु सतगुरुको आन लखावे ॥
जो नहीं गर्भवास महँ आवा। अजावन सोई गुरू कहावा ॥

साखी--बहुत भेद कह्यो तुम, सुन्यो सुरति दे कान ॥
अब कछु ऐसो भाषिये, आदि अंत बंधान ॥

सतगुरु वचन--चौपाई

तब सतगुरु असवचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥
बहुत ज्ञान सुनायो तोही । तुम अंतर जाना अब मोही ॥
कोटि ग्रन्थ ज्ञान हम भाखा । सुनिके भेद तुम अन्तर राखा ॥
पुनि टकसार मैं कहां अमानी । सो धर्मनि तुव मन नहिं मानी ॥
बीजक ज्ञान मैं कह्यो अरथाई । सो तुमरे चित एक नहिं आई ॥
चौथे मूल ज्ञान लै आवा । सर्व लोकन को भेद बतावा ॥
चार ज्ञान मैं कहा समझायी । तेहिमें तुम्हे परतीति न आयी ॥
विनु परतीति काज नहिं होई । श्रद्धा विना जिव जाय विगोई ॥

साखी--पुरुष हमसों जो कही, सो तोहि दीन्ह दिखाय ॥
और धर्म नहिं गोइहौं, सुनु धर्मनि चित लाय ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । साहिब विन्ती सुनो हमारी ॥
सकल भेद गुरु कहौ बुझायी । जाते संशय सब मिटि जायी ॥
आदि अंत मधि गति सोई । सबै कहौ राखो मति गोई ॥
पहले आदि समरथ किमि होई । उत्पति प्रलय भाषो तुम सोई ॥
तुम संदेशी आदिते आये । सर्व भेद तुम हमैं सुनाये ॥
चारि ज्ञान तुम भाषि सुनावा । ज्ञान चारिको अर्थ बतावा ॥
अब त्रयवाचिकमोहि सुनावहु । दया करो जनि मोहि छिपावहु ॥

साखी--तुम निज सतगुरु आदि हो, हम हैं वंश तुम्हार ॥
समरथ अन्त बतावहु, मिटे भर्म कौवार ॥

सतगुरुवचन--चौपाई

तब साहिब अस वचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥
आदि अन्त नहिं कोई वासा । आपहि आप कीन्ह प्रकासा ॥

साहब हते और नहिं कोई । शिष्य गुरू हते नहिं होई ॥
नहिं तब ब्रह्मा वेद निशानी । नहीं तब शिवकी उत्पानी ॥
नहिं तब विष्णु न निरंजन राया । नहिं तब अच्छर सृष्टि बनाया ॥
नहिं तब अतीत पुरुष कर ताना । नहिं तब रचे लोक अरु धामा ॥
नहिं सृष्टि न सिरजनहारा । नहिं कछु असार नहिं कछु सारा ॥
नहिं नरसिंग न कलकी नाहीं । गुरू और शिष्य बताऊ काहीं ॥

साखी–पिण्ड ब्रह्माण्ड तब ना हता, नहीं लोक बिस्तार ॥
पुरुष एक निश्चल हता, जिनकी सकल पसार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

सुनु सद्गुरु विनती चित लायी । तुम गुरु रूप सदा सुखदायी ॥
ब्रह्मा देवता वेद विचारा । सो हम बूझे हृदय मँझारा ॥
चारि वेद भे तहँ चारी । चारि धाम गुरु कहो विचारी ॥
सर्व ज्ञान गति तुम भाखा । क्षर अक्षर थापि जो राखा ॥
उत्तर पुरुष सब कछु कीना । सो तो हम जीवन सब चीन्हा ॥
यही भेद विरञ्चि विचारा । सोई आठों योग पुकारा ॥
सोई सकल मुनिन ठहराई । सोई शुकदेव संसार सुनाई ॥

साखी–सोई पुरुष तुमही कहो, हम चीन्हा जियमाँहि ॥
तुम काहेको आयऊ, सोई बतावो थाहि ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तब सतगुरु बोले विहँसाई । धर्मदास बोले लडकाई ॥
जो कछु और विरंचि विचारा । सबकी गतिमति कह्यौ निरधारा ॥
तेहिते और कहाँ है भाई । यही भेद सब जीवन पायी ॥
त्रिवाचिक तुम पूछो मोही । नितप्रति अगम कहौं मैं तोही ॥

कहा कहौं मैं कहत डराऊँ। ताते उत्पति कहत लजाऊँ॥
तब नहिं होते पिण्ड ब्रह्मण्डा। तब ना हती पृथ्वी नौ खंडा॥
तब नहिं लोक द्वीप की बानी। तब नहिं जीव जन्तु उत्पानी॥
तब नहिं पुरुष और प्रकीरती। तब नहिं अछर निरञ्जन जोती॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा। तब नहिं गौरी गणेश औशेषा॥
तब नहिं ज्ञान ध्यान औ ज्ञानी। तब नहिं वेद कितेब निशानी॥
तब नहिं गुरु सतगुरुकी बानी। तब नहिं सात सिन्धु उत्पानी॥
तब नहिं सुरति शब्द निर्मावा। तब नहिं एक दोय परभावा॥

साखी-पांचतत्त्व तब ना हते, न हते आठों धाम॥
नौद्वार तब ना हते, कहाँ लीन्ह विश्राम॥

धर्मदासवचन-चौपाई

सतगुरु मैं बलिहारी तेरी। जीवन की काटी तुम बेरी॥
दया सिंधु दाया तुम कीन्हा। सर्व जीव आपन करि लीन्हा॥
दया करो जनि मोहिं छिपाओ। आदि अन्त उत्पन्न सुनाओ॥
जो आपण करि जानो मोही। सकल भेद बतावहु तोही॥

साखी-धर्मदास विनती करे, गहि कबीरको पाय॥
साहिब तुम बीछुरे, शब्द वाहिरे जाय॥

सतगुरु वचन-चौपाई

सुनु धर्मदास यह अकथकहानी। सुर नर मुनि काहु नहिं मानी॥
तन मन धनसो चित्त लगावे। गुरुका अन्त कोइ बिरले पावे॥
युगन युगन मोहि आवत भयऊ। सत्य शब्द मैं कहते रहेऊ॥
कहा कहौं कोई नहिं मानैं। जे समझै ते झगरा ठानै॥

सत्ययुगका वर्णन

सतयुग चारि हंस समझाये। प्रथम राय मिन्नसे नहिं आये॥

चित्ररेखा रानी कर नाऊ। तिन सुनि शब्द श्रवण चितलाऊ॥
तिन युगबन्ध चौका कीन्हा। युग बन्धी परवाना लीन्हा॥
राजा रानी पूछत मोही। सो हकीकत कहौं मैं तोही॥
अष्टचौकाको शब्द सुनावा। राजा रानी लोक पठावा॥
दुसरे राय वटक्षेत्रके आवा। सतसुकृति तहँ नाम धरावा॥
तिन राजा पूछा चित लायी। तब तेहि भेद कह्यो समझायी॥
पान परवाना राजहिं दीन्हा। राजा वास लोकमें कीन्हा॥
तिसरे राय हरचन्द कहँ आये। बन्ध काटिके लोक पठाये॥
चौथे पुरी मथुरामें आयी। विकसी ग्वालिनके समझायी॥
चारिहंस सतयुग समझाये। ते चारों गुरुवंश कहाये॥
चारिहंस नौ लाख बचाये। शब्द भरोसे घरहिं पठाये॥

त्रेता युगका वर्णन

पुनि त्रेता युग कहौं विचारी। सात हंस त्रेतायुग तारी॥
प्रथम ऋषी शृंगी समझाये। दुसरे अयोध्या मधुकर आये॥
तिनसे शब्द कह्यो टकसारा। चौथे बोधे लछन कुमारा॥
पचवें चलि रावण लगि गयऊ। तहां भेंट मन्दोदरिसे भयऊ॥
गर्वी रावण शब्द न माना। मन्दोदरी शब्द पहचाना॥
छठैं चलि वसिष्ठ लगि आये। ब्रह्म निरूपन उनहिं सुनाये॥
सतये जंगलमें कियो वासा। जहां मिले ऋषी दुर्वासा॥
सात हंस सातौ गुरु कीन्हा। परमतत्त्व उनही भल चीन्हा॥
सातौ गुरु त्रेतामें भयऊ। देइ उपदेश सो हंस पठयऊ॥

द्वापरयुग वर्णन

त्रेता गत द्वापर युग आया। सत्रह जीव परवाना पाया॥
प्रथमेंरायचन्द विजय कहँ गयऊ। ताकी रानी इन्दुमति रहेऊ॥

दुसरे राय युधिष्ठिर कहँ आये । द्रौपदी सहित परवाना पाये ॥
तिसरे पाराशर पहँ आये । निर्णय ज्ञान ताहि समझाये ॥
चौथे राय धुंधुल लहि भेदा । बहुत ज्ञानको कीन्ह निखेदा ॥
पचयें पारसदास समझावा । स्त्री सहित परवाना पावा ॥
छठये गरुडबोध हम कीन्हा । विहंग शब्द गरुडको दीन्हा ॥
सातें हरिदास सुपच समझावा । नीमषार महँ उसको पावा ॥
अठयें शुकदेव पहँ ज्ञान पसारा । सकल सरब भेद निरवारा ॥
नवमें राजा विदुर समझाया । भक्तिरूप उन दर्शन पाया ॥
दशमें राजा भोज बुझाया । सत्य शब्द पुनि उसे चिह्नाया ॥
ग्यारहें राजा मुचकुन्दहि तारे । बारहें राजा चन्द्रहास उबारे ॥
तेरहे चलि वृन्दावन आये । चारि ग्वाल गोपी समझाये ॥
गुरु रूप पुनि पन्थ चलाये । भौसे हंसा आनि छुडाये ॥
बावन लाख जो जीव उबारा । कलियुग चौथे यहाँ पर धारा ॥

कलियुग वर्णन

प्रथमें गोरखदत्त समझाये । तारक भेद हम तुमहिं बताये ॥
दुसरे शाह बलखको बोधा । पढे आरबी बहुविधि सोधा ॥
तिसरे रामानन्द पहँ आये । गुप्त भेद हम उन्हें सुनाये ॥
चौथे पीरकी परचे दीन्हा । पचये शरण सिकन्दर लीन्हा ॥
छठे बीरसिंह राजा भयऊ । ताको हम शब्द सुनयऊ ॥
सतयें कनकसिंघ समझाये । सोलह रानी लोक पठाये ॥
अठएँ राव भूपाले आये । ग्यारह रानी लोक पठाये ॥
नौमें रतना बनिन समझाई । जाति अग्रवालिन करत मिठाई ॥
दशएँ अलिदास धोबी गयऊ । सात जीव परवाना पयऊ ॥
ग्यारहें राजा भोज समझायी । तिन बहु भक्ति करी चितलायी ॥
बारहें मुहम्मदसो कह्यो कुराना । हद हुकुम जीव कर माना ॥

तेरहें नानकसे कह्यो उपदेशा । गुप्त भेदका कहा संदेशा ॥
चौदहें साहु दमोदर समझावा । करामात दै जीव मुक्तावा ॥
चौदह हंस कलियुगमें कीन्हा । गुरु स्वरूप परवाना दीन्हा ॥
पांचलाख हम पहिले तारे । पीछे धर्मनि तुम पगुधारे ॥
वंशन थाप्यों कियो कडिहारा । लाख ब्यालिस जीव उबारा ॥

साखी- तुम जानो हमही मिले, फिर पूछो मोहि ॥
नाम भरोसे पहुँचि हैं, ज्ञान करे का होहि ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास जिव संशय मानी । जब बोले सतगुरु अस वानी ॥
दोइ करजोरि चरण चित धरई । फिर फिर गुरुसों विनती करई ॥
बड़ी भूल हमरे जिय आयी । समरस करिके ज्ञान फैलायी ॥
मेटचो धोखा साहिब मोरा । दयासिन्धु जिव बन्दी छोरा ॥
धर्मदास जिय भये मलीना । जैसे कमल जिव सम्पुटदीन्हा ॥
अजान जीव हम तुम्हैं न चीन्हा । भाग बड़े मोहिं दर्शन दीन्हा ॥
जो कुछ कहब सोई हम मानब । वचन तुम्हार हृदयमें आनब ॥

साखी--धर्मदास जिव डरपे, गुरुकी मानी त्रास ॥
अब नहिं पूछौं ज्ञान मैं, मोहिं दरशकी आस ॥

सतगुरुवचन—चौपाई

सुनु धर्मदास कहौं मैं तोसो । जो कछु भेद पूछिहो मोसो ॥
प्रथमहिं समरथ आप अकेला । उनके संग दोसर नहिं चेला ॥
तब निश्चल शब्द उच्चारण भयऊ । तेहि शब्द एक कमल निर्मयऊ ॥
तेहि कमलमें आसन दियऊ । तहाँ शब्द एक कमल निर्मयऊ ॥
तेहि कायाको रूप अपारा । असंख पाखरीको विस्तारा ॥

तहाँ बैठि सब रचना कीन्हा। सोई शब्द अधार जो लीन्हा॥
मुख हिरदय ते कीन्ह प्रकाशा। तहाँ रूप अति भयी उजासा॥
काया ते काया निरमाये। मुख कमल हो बाहर आये॥
रूप सुरतिका रूप अपारा। भृंगि शब्द पारस अनुसारा॥
भृंगिशब्द पुनि पारस दीन्हा। निःकलंकपुरुषप्रकटकरलीन्हा॥
रूप सुरति ते निकलंकी भयऊ। तिनको आज्ञा उत्पति दियऊ॥
निकलंक विनती तब कीन्हा। कौन सन्धि साहब मोहि दीन्हा॥
कहौ भेद जेहि उत्पन होई। सोई शब्द गुरु भाषो सोई॥
तब समरथ अस वचन उचारा। निष्कलंक सुन मता हमारा॥
शब्द हमार दृढ हिरदय धरहू। निज सुमिरण तुम हमरा करहू॥
जो चित सुरति तुम्हारे होई। तौन वस्तु सिखै सब कोई॥

साखी–जो कुछ रचना चाहो करन, सुरति करत सो होई॥
रचहु लोक तुम वेगि पुनि, दीन्ह वचन मैं सोई॥

चौपाई

सुरति करत सबही बनि आई। इच्छा करत सन्धि होय भाई॥
निश्चल लोक हमारो बासा। अविगति कमल कीन्ह प्रकासा॥

साखी–जीव सृष्टि रचना करो, सकल जीव उत्पान॥
शब्द भरोसे तुम रहो, लेउ वचन सिर मान॥

चौपाई

तुम धर्मदास सुनो चित लाई। तब निष्कलंक सृष्टि निरमायी॥
निःकलंक सुरति स्वास ठहरायी। सहज सुरतिको टेक बनायी॥
दहिने अंक सो शब्द निर्मायी। सहज शब्द सुरति अंकुर उपायी॥
सात करी विस्तार बनायी। यहि विधि रचना निरमायी॥

सात करी अंकुर ते भयऊ । भिन्न भिन्न प्रसंग सो लयऊ ॥
सीप सरूपी करी जो कीन्हा । स्वास स्वरूपी इच्छा दीन्हा ॥
सात इच्छा सात करिनमें भयऊ । स्वाति सरूप बून्द तेहि दयऊ ॥
सातो करि भयी प्रकासा । नहिं तब धरती नहीं अकाशा ॥
अर्द्ध अंकुर रहा ठहरायी । तब मुख शब्द स्थिर कहँ आयी ॥
सोरह अंस जो जन विस्तारा । इतनी दृष्टि अंकुरज पसारा ॥
तेहिमें सास करी उपजायी । ताकर मर्म काहु नहिं पायी ॥
तेहि करिन ते अण्डा भयऊ । दोयकरी बिन अण्डा रहेऊ ॥
नहिं तब धरती नहीं अकाशा । अधरहिं अधर अण्ड प्रकासा ॥
मध्य में अण्ड करे चौ चण्डा । एक अण्ड उपज्यो प्रचण्डा ॥
भिन्न भिन्न गति न्यारी कीन्हा । शिवशक्तिअण्डमहँ धरि दीन्हा ॥
नौसे निमिष अन्तर होय छूटा । तबहीं अण्ड उठ्यो पुनि फूटा ॥
प्रथमहि तेज अण्ड विगस्यो भाई । तामें पांच तत्त्व निर्माई ॥
बाहर पालँग तेज अण्ड विस्तारा । तामें पांच तत्त्व भौ सारा ॥
तत्त्व स्नेह अण्ड सो कीन्हा । अस्थिर शब्द काल भल दीन्हा ॥
तबहीं श्रवण साजी वानी । तेहिते मूल सुरति उत्पानी ॥
अबोलपरस सुरति कहि दीन्हा । सात संधि प्रकट कर लीन्हा ॥
सात सन्धि तब गुप्तहिं पेखा । पीछे सोहं शब्द विवेखा ॥
सोहं शब्द सत्य अनुसारा । सोहं सुरति अजावन पसारा ॥
जावन ते पुरुष अचिंत निर्मायी । तेहि पुरुष अपने निकट बुलायी ॥
तेहिसो पुरुष ऐसी कही । सकल सृष्टि रचो तुम सही ॥
पुरुषको विनय कीन्ह करजोरी । हो सतगुरु विनती यक मोरी ॥
केहि विधि रचौं सो देहु बतायी । तीन भेद गुरू देउ पढायी ॥
नीकलंकी पुरुष वाच उचारा । शब्द प्रतापकर अगम विचारा ॥
शब्द प्रताप लेओ शिर नायी । सुमिरण करो हमहिं लौलाई ॥

पांच अण्ड हम पहिले कीन्हा । तेहिमें सर्व तत्त्व गुण दीन्हा ॥
जो कछु इच्छा करौ दिलमाहीं । सो सब कछु पैहौ तहांहीं ॥
शब्द प्रताप अचिंत जब लीन्हा । सकल सृष्टिसो उत्पन्न कीन्हा ॥

साखी--पुरुष अण्ड लैगये, देखा सकल पसार ॥
सद्गुरु रहे निहार तब, समरथ वचन अधार ॥

धर्मदासवचन--चौपाई

धर्मदास चरण गहे धाये । हे सतगुरु तुम अगम बताये ॥
पुरुष अचिंतकै सृष्टि फरमायी । तात सन्धि कहँ राखे छिपाई ॥
कौन लोक कहँ लीन्हे वासा । सोई भेद गहौ परकासा ॥

सतगुरु वचन

जब अचिंतको सृष्टि फरमायी । तेहि पाछे यक सुरति उठायी ॥
सोरह असंख अंकुर पसारा । तेहि में पांच अण्ड विस्तारा ॥
मिहरसुरति अजर लोक बनायी । तेहि महँ सातौ सन्धि छिपायी ॥
सातौ सन्धि उहां लै राखा । समरथ भेद गोइ कछु भाखा ॥
सातौ सन्धि सो गुप्त छिपावा । ताकोअन्त काहु नहि पावा ॥
मिहर लोक सन्धिन कहँ दीन्हा । आपन वास निरन्तर लीन्हा ॥
निरंतर गुप्त ठिका निर्मायी । तामें सतगुरु रहे छिपायी ॥

साखी-गुप्त भेद किया इतनौ, काहु न पायो पार ॥
पुरुष अचिंतकी सृष्टिको, धर्मनि सुनो विचार ॥

चौपाई

पुरुष जब घटमें कीन्ह विचारा । प्रेम सुगति तबहीं उचारा ॥
प्रेम अनन्द उपज्यो रे भाई । तेहिते प्रेम सुरति उपजाई ॥
प्रेम सुरति भै रूप अपारा । प्रेमानन्द घट शब्द उचारा ॥
नेत्र हेर बुन्द सो ढारी । सोइ सुरति दिल मांहि निहारी ॥

सुरति बुन्द तब तासों लीन्हा । सोई बुन्द अधर महँ दीन्हा ॥
ताहि बुन्दके अक्षर भयऊ । स्वर स्वासा हो बाहर गयऊ ॥
पुरुष अचिन्त आज्ञा सब दीन्हा । तेज अण्ड जो बैठक लीन्हा ॥
बारह पालंग अण्ड है सोई । तेहि मों सृष्टि तुम्हारी होई ॥
अच्छर आनन्द ताहि समाया । तामें परकृति सुरति उपजाया ॥
प्रकृति तें चारि अंश निर्मायी । देखि अंश आनन्द समायी ॥
तेहि अनन्द सो निद्रा आयी । सत्तर निमिष जब गयो सिरायी ॥
चारों जने समाधि लगायी । ताको मरम कहौं समझायी ॥
तब सतगुरु एक अवगति कीन्हा । जल तत्त्व ते अण्ड तब दीन्हा ॥
जब अण्डा जलमें उतराना । तब अन्तर निद्रा विलगाना ॥
अक्षर मनमें कीन्ह विचारा । विकल भये तबहीं पगु धारा ॥
चले चले अण्डा लगि आवा । देखत अण्ड क्रोध उपजावा ॥
सोई क्रोध अण्डमें आवा । तेज शक्ति ताकर प्रभावा ॥
तेहि कारण सो फूट्यो भाई । तेहिते निरंजन उपजाई ॥
कालरूप सो प्रकट प्रचण्डा । महा भयानक रूप अखण्डा ॥
अक्षर मनमें शंका आई । तब चारों सुतन कहँ लीन्ह बुलाई ॥
उनको बहुत भांति समुझाई । पृथ्वी बीज धरौ तुम जाई ॥
जग उत्पति तापै होय भाई । कूर्म शेष पृथ्वी थाम्हो जाई ॥
जाते पृथ्वी डगै नहिं भाई । सोइ उपाय करो तुम जाई ॥
धर्मराय तुम लेखा लेहू । सकल सृष्टि को लेखा देहू ॥
चारों अंश को सिखाप दीन्हा । आप वास मुक्तिदीपमें लीन्हा ॥

साखी–यह रचना अचिन्तक, अक्षर को विस्तार ॥
निरंजन बैठे शुभ शिखर, मान सरोवर द्वार ॥

चौपाई

पुरुष अचिंत अस चित्त विचारा । सन्धि सुरति घट में उच्चारा ॥

तेहिते चौदह मुनि उपजाये। जल अण्डते अंश बनावे ॥
चौदह मुनि चौदह दीप बैठारा। पांजी पताल उनको विस्तारा ॥
संधि छाप सौंप सब दीन्हा। अच्छर लोकमें चौका कीन्हा ॥
यहि पुरुष चौदह अंश बनावा। यहि अक्षरमें मोह समावा ॥
तब अक्षरको संशय आई। तेहि ते स्वासा छाँडे भाई ॥
स्वासा संगम उठी तब बानी। माया सुरति तब भयी उत्पानी ॥
माया सुरति अच्छर उपजायी। अष्टंगी सो कैसो शक्ती आयी ॥
अच्छर अष्टंगी सो कहई। जाब जहाँ निरंजन रहई ॥
अष्टंगी तब कहे समझाई। हम कैसे निरंजन पहँ जाई ॥
तब अक्षर अस कहे भेऊ। निरंजने जाइ सिखापन देहू ॥
कन्या चलि निरंजन लगि आयी। आदि निरंजन मिले तब धायी ॥
देखि कला तब गये भुलाई। हे कन्या तोहिं को निर्माई ॥
काम ज्योति प्रकटी प्रचण्डा। तब चित विकल भयो नरमण्डा ॥
सकल रूप गयउ भुलाई। कामकि लहरि दोउको आई ॥
तब संयोग भयो त्रय बारा। जेठे ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥
तीजे शम्भू सबसे छोटा। ये निज भये ताहिके ढोटा ॥

साखी—जैसे रूप निरंजन, तैसे तीनो बार ॥
प्रलय काल पैदा भये, प्रलय करत संसार ॥

धर्मदासवचन—चौपाई

धर्मदास जिव भये अनन्दा। मैं पाया पूरण गुरु चन्दा ॥
धन्य भाग मोहि मिले गुसाई। आपन करि मोहि लियो मुक्ताई ॥
और एक पूछनकी आशा। चौरासी लक्ष कैसे प्रकाशा ॥
तीन प्रकार सृष्टि किन पाऊ। चौथेका मोहि भेद बताऊ ॥

साखी—धर्मदास सुख पायो, घट मो भयो अनन्द ॥
संशय मिटे प्रफुल्लित भये, ज्यों पूनोको चन्द ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

सुनु धर्मनि मैं कहुँ समझायी । लक्ष चौरासी योनि बनायी ॥
माया चरित्र अब तोहिं सुनाओं । एक एक के सब भेद बताओं ॥
चारि कला स्वरूप धरि चारी । एक एक गति कहौं विचारी ॥
एक स्वरूप सुरति लगि रही । तीन स्वरूप भिन्न घर सही ॥
एक कला गायत्री भयऊ । जब पिता खोजको ब्रह्म गयऊ ॥
सो गायत्री ब्रह्माको दीन्हा । दूसरी कला लक्ष्मी कीन्हा ॥
मथ्यो समुद्र रतन कढि आया । लक्ष्मी तबही विष्णुने पाया ॥
तिसरी कला पार्वती कीन्हा । सोइ कला शम्भु कहँ दीन्हा ॥
यह चरित्र मायाको भाई । जाकी गति मति लखी न जाई ॥
तीन शक्तिको खेल अपारा । इनही रच्यो सकल संसारा ॥

साखी–माया परबल सबनमें, जो चाहे सो होय ॥
लख चौरासी इन रची, मरम न जाने कोय ॥
माया सृष्टि माया रची, जीव अनेक बनाइ ॥
उनते सब कछु होत है, कहैं कबीर समझाइ ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे सृष्टिखण्डवर्णनोनाम प्रथमस्तरंगः ।

अथ द्वितीयस्तरंगः

ज्ञानखण्ड वर्णन

धर्मदास वचन–चौपाई

धरमदास पूछे चितलायी । उत्पति भेद सकल हम पायी ॥
अब जिव कारज कहो विचारा । जेहि करनीसो हंस उबारा ॥
सो विधि ज्ञान कहो समझायी । जाहि ज्ञान से लोकहिं पायी ॥
जीव उबारन ज्ञान सुनाओ । हे साहेब ! मोहिं नाहिं दुराओ ॥

साखी-सत्यसार बतावहु जाते कारज होय ॥
चौदह कोटि ज्ञान जो, सो हम देखि विलोय ॥

सतगुरुवचन-चौपाई

सुनु सुकृत मोर प्राण अधारा । तुमसे कहौं अब सकल पसारा ॥
ऋग्वेद भेद मूलको पाया । चारि सुखको मर्म लखाया ॥
प्रथमहिं चारि वेद है सारा । चारि धाम पर मुक्ति पसारा ॥
सेवक शब्द सुमिरन चित लावे । सब सुख पृथ्वी पर भुक्तावे ॥
कोइ सिद्ध कोइ पण्डित होई । कोइ रूप पावै पुनि सोई ॥
जौं लगि दान पुण्यकी आशा । तब लगि है वैकुण्ठ निवासा ॥
कोइ विद्या कोइ वेदको पावै । फिरिकै देह संसार धरावै ॥
अब सुनु साम वेद विचारा । विष्णु ध्यान वैकुण्ठ सिधारा ॥

साखी-बीते पुण्य भोग सो कीन्हे, आइ धरे जग देह ॥
जब लग दान पुण्य का आशा, तब लग सुरपुर नेह ॥

चौपाई

तिसरी मुक्तिको सुनो विचारा । सब मुनि योगी शून्य सिधारा ॥
सायुज्य मुक्ति चौथी है भाई । अक्षर ध्यान मानिकपुर जाई ॥
पचईं जीवन मुक्ति है भाई । जहाँ देह धरे विन रहै समाई ॥
कहि निज उत्तम पुरुष बतावा । परम धाम सब संतन गावा ॥
पुरुष भक्ति जाके घट आई । एक ब्रह्म राखे ठहराई ॥
परम धाम सोइ पहुँचे जायी । जिन परमात्मा चीन्ह्यो भाई ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास पूछे कर जोरी । एक भेद प्रभु कहौं बहोरी ॥

काहे पर वह कहिये भामा। जहां जीव पावे विश्रामा ॥
करनी लोक मुक्तिको भेदा। तुमसे कहौ मैं सुन्यो निखेदा ॥
सो सब भेद अहो मोहि सांई। संशय सब विधि देहु मिटाई ॥

साखी—काहे पर सुमेरु है, काहेपर कैलास ॥
काहे ऊपर शून्य है, कहँ अक्षरको वास ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

सुनु धर्मदास तोहि कहौं विचारा। यह भेद अगमगति भारा ॥
सोरह नाल पुरुष निरमायी। लोकनको थम्भन नाल रहायी ॥
कदली नाल लोकते आई। सात शाख भइ ताकी भाई ॥
सुवरण रंग नाल है सोई। एकहि वर्ण नाल सब होई ॥
प्रथमहि गुप्त नाल है भाई। तहां परबत पुनि नाम धराई ॥
तापर परम धाम बनाया। तेहि मों पुरुष तत्त्व रहाया ॥
दुसरी मंजुम नाल जो आवा। मानिक पर्वत नाम धरावा ॥
तेहि पर मानिक द्वीप बसाया। अक्षर पुरुष दीप सो पावा ॥
तिसरी सुरंग नाल है भाई। तापर झझरी दीप रहाई ॥
तहँवा रहै निरंजन राई। तीन देव तिनही निर्माई ॥
चौथी नाल क्रांति रह सोई। ता ऊपर वैकुण्ठ जो होई ॥
पंच शिखर सुमेरु सँवारी। एकपै इन्द्र एक कुबेर भंडारी ॥
यकपै ध्रुव एक पैयम विस्तारी। मध्यमें विष्णु सकल व्रतधारी ॥
पांच ये नाल जो रचि राखा। ताकर नाम कैलास अस भाखा ॥
तहवाँ शंकरको है बासा। याग समाधिकी लावै आसा ॥
छठयें नाल उमंग ठहरायी। अघाचलही नाम सो पायी ॥
सतय त्रिकुटी ब्रह्म अस्थाना। तरंग नाल पारस है ठाना ॥
कलकी नालकी सातों साखा। सातौ दरस यहां लों राखा ॥

यही बनाव धरती मों होई। अधर वस्तुको जानै सोई ॥
अधरही चौका चारि प्रकासा। चन्द्र सूरजको तहां निवासा ॥
प्रथम अधर अंकुरहि निशानी। पांच अण्ड कीन्हे उत्पानी ॥
दूसर अधर निकलंकी जाना। तिसरे रूप सुरति परवाना ॥
चौथे अविगति नाम धराया। पांचे सरवज्ञी पुरुष कहाया ॥
चारी अंश अधर विस्तारा। धर अधर दोनोंसे न्यारा ॥

साखी-पांच तत्त्व तब ना हते, हते न हाट रु बाट ॥
लोक द्वीप तब ना हते, ना हते औघट घाट ॥

चौपाई

सुनो धर्मदास कहौं मैं तोही। जो कछु भेद पुछिहौ मोही ॥
सब अंशनके लोक बतावा। अंश वंश सब तोहि लखावा ॥
करनी करै सो लोकहि जायी। विनु करनी फिरि फिरि पछितायी ॥

साखी-सर्वज्ञसागर खोजहि, सब ग्रन्थनको सार ॥
कहैं कबीर निज मूलको, सत्य शब्द आधार ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे ज्ञानखण्डवर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः।

समाप्तोयं ग्रन्थः

उपसंहार-चौपाई

जेहि मानुष बुद्धि सब विधि आवै। अपनो कारज सोइ बनावै ॥
कपट कुटिलता काल नशायी। सत्य विचार रहै लौलाई ॥
जवनी भांति जिव कारज होई। लाज मिटाय करै दृढ सोई ॥
लोककाज कुलकानके मारे। भँवरि भँवरि भव रहैं विचारे ॥
जेहि यम फन्द छूटै सो करना। नाहकमें काहे पचि २ मरना ॥

भली भांति सो लेहु विचारी । सकल अंचारज[1] मतहिं सुधारी ॥
खरा खोट जो परखा नाहीं । अन्धा धोखे मूल नशाहीं ॥
प्रथम विचारहु औषध रोगा । केहि विधि शब्द हरै सब सोगा ॥
देखो शब्द प्रकाश विचारी । जाते सकल होय उजियारी ॥
गुरु एक सो कौन कहावे । जासो आवागमन नशावे ॥
सेवा अनेक करिय केहि केरा । विन जाने सब धुन्ध अन्धेरा ॥
गुरु मत मनमत करे विचारा । सो जिव निज करे निरुआरा ॥

साखी—विन देखे नहिं देशकी, बातें कहै सो कूर ॥
आपै खारी खात है, बेचत फिरे कपूर ॥

चौपाई

औषध पांच राह सब करई । औषध विना न कोई सहई ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । द्वारा पंच औषधिकी सन्धा ॥
सबहीं द्वार बूझ रहायी । बिन बूझे नहिं कोइ ठहरायी ॥
कोइ झीना कोइ मोटा द्वारा । तैसहि तासु भिन्न व्यवहारा ॥
झीना शब्द है पवन स्वरूपा । तासो मोटा अनलको रूपा ॥
अनलहु ते जल मोटा होई । जलते मोटी पृथ्वी है सोई ॥
पुनि प्रकाश एकते एका । थिर होइ देखे करे विवेका ॥
पृथ्वी मोटी आँख प्रकाशी । तासे मध्यम दृष्टि प्रवेशी ॥
पृथ्वीसे जल झीना होई । भीतर जो है दीसे सोई ॥
जलसो झीन तेज प्रकाशा । जामे परशे धरति अकाशा ॥
रूपसो अधिक शब्द उजियारा । दृष्टिमें आवे सब संसारा ॥
भूत भविष्य जो हो वर्तमाना । शब्द भीतरै सबै समाना ॥
बूझ शब्द में पैठे जायी । शब्दके भीतर अनल रहायी ॥
अनल मध्य होयके जल देखा । जलके भीतर पृथ्वी पेखा ॥

---

१ आचार्य्य, धर्मप्रवर्तक ।

साखी-रैन समानी भानुमें, भानु अकाशे माहिं ॥
अकाश समाना शब्दमें, शब्द रहा कछु नाहिं ॥

चौपाई

पांचो औषध करै विचारा । मोटा झीना जो व्यवहारा ॥
औषध अन्न जल पेट समाही । जाते क्षुधा औ प्यास नसाही ॥
बहुत प्रकार लादके रोगू । सो सब जाय भोजन संयोगू ॥
गन्ध कपाले पहुँचे जायी । गुण औगुण सब अंग समायी ॥
लेपै गुण सब ले पहुँचावै । गुण औगुण सबमाहिं समावै ॥
आंखिकी राह रूप गहि लेई । शीत उष्ण सब अंगमें देई ॥
शब्द औषधी कानके द्वारा । बूझ समाय करे निरुआरा ॥
हर्ष विषाद यंत्र औ मन्त्रा । व्यापे सबै कोइ कोइ स्वतन्त्रा ॥
मर्म सबै द्वाराको बूझे । बिना शब्द निर्णय नहिं सूझे ॥
स्पर्श रूप इत्यादिक चारी । सो सब मोट स्थूल अधिकारी ॥
पुनि अस्थूल सो थिर न रहायी । तैसहिं औषध ताहि समायी ॥
अंग अंगको देश है जैसा । अल्पे गहिये औषध जैसा ॥
शब्द अति झीना बूझविचारा । जाते होय सकल निरुआरा ॥
शब्द बिना कोइ पार न पावे । बिन गुरु कौन जो दाव लखावै ॥
सर्व देश सर्वज्ञ है सोई । तेहि बिनु कारज सधे न कोई ॥

साखी-शब्द बिना श्रुति आंधरी, कहो कहांको जाय ॥
द्वार न पावे शब्दका, फिरि फिरि भटका खाय ॥
गुरू गुरूमें भेद है, गुरू गुरूमें भाव ॥
गुरू सदा सो वंदिये, शब्द बनावे दाव ॥
फेर परा नहिं अंगमें, नहिं इंद्रिनकी माहिं ॥
फेरा परा कछु बूझमें, सो निरवार्यो नाहिं ॥

चौपाई

यहि संसार बहु वैद्य विराजे । नाना भांति औषधी साजे ॥
साच एक झूठा बहुतेरा । विना सांच नहिं होय निवेरा ॥
एक असल पर नकल अनेका । अनेक नकल नहिं पावे एका ॥
बहुविधि ठग सब करे ठगाई । यमके फन्दा रहे अरुझाई ॥
बूझि समझिके औषध कीजै । मिथ्यामें जिव काहेको दीजै ॥

मसला

गुरु कीजिये जानिके, पानी पीजे छानिके ॥

चौपाई

वेद पुराण किताब कुराना । दोहा साखी शब्द परमाना ॥
अनन्त भाँतिका शब्द पसारा । विनु जाने नहिं होय सुधारा ॥
सो सब औषध बहु विधि जाचे । यम फन्दासे तबही बांचे ॥
पक्ष वाणीको मन मत कहिये । जाते द्वन्द सबै घर लहिये ॥
निर्णय वाणी गुरु मत होई । पक्षा पक्ष जाते सब खोई ॥
जब निर्णयकी वाणी आवै । झूठा खोटा आपु लजावै ॥
निर्णय सो सबके हितकारी । जेहि परसे जिव होय सुखारी ॥
सार शब्द निर्णयको नामा । जाते होय जीवको कामा ॥
गुरु एक जो निर्णय करई । झगरा कबहुँ परे न परई ॥
जो कोइ निर्णय आश्रित भयऊ । सेवा करि निज कारज कियऊ ॥
सो सब सेवा शिष्य कहावै । मन मत सो जो और बतावै ॥
जग बुद्धि कहे मम गुरु एका । जेहि तेहि सेवा करे अनेका ॥
पुनि जाको इन गुरु ठहराई । ताको दूसर गुरू सहाई ॥
तेहिकी सेवा करे लौ लाई । सो सेवा पद कैसे कहाई ॥

टहल करे टहलू कहलावै । तासो पद सेवा बनि आवै ॥
सोइ सेवक जो सेवा करई । विना विचार बूझ न परई ॥
अपने अपने गुरुमत माने । और सब मन मंत अनुमाने ॥
विनु निर्णय सो द्वन्द्व न जाई । पचि पचि मरहिं करहिं लडाई ॥
जहँ झगडा तहँ गुरुमत नाहीं । जहँ गुरुमत तहँ द्वन्द्व नसाहीं ॥

साखी—पक्षा पक्षके कारणे, सब जग रहा भुलान ॥
निपक्ष होइके हरि भजे, सोई संत सुजान ॥

शब्द शब्द बहु अंतरा, सार शब्द मथि लीजे ॥
कहँ कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धृग जीवन सो जीजे ॥

चौपाई

खरा खोट परखहु बहु भांती । तबहीं होय जीव कुशलाती ॥
जेहि गुरु ज्ञान न छूटत केरा । बहुत अनुमान सो भ्रम बौडेरा ॥
भवसागर दुस्तर कठिनाई । नौका नाम तहँ सत्य दिढाई ॥
बूडे भवकी धार न सूझे । मुए मुक्ति ऐसी दृढ बूझे ॥
जहँसे उपजे तहां समाना । कसर विकार मूल नहिं जाना ॥
भरमें आप जीव भरमावे । नाटक चाटक सुयश बढावे ॥
करामात करतूत बखाने । नास्तिक ज्ञान सोइ सत्यकै माने ॥
ऋद्धि सिद्धि सब जात नसाई । नास्ति ज्ञान नाहीं कुशलाई ॥
त्यर्ष ऐश्वर्य नास्तिन माहीं । जाके पीछे जिव बौराहीं ॥
आपु गये यजमानहु खोये । भांति भांति फन्दा अरुझोये ॥
रोगी वैद्य दोनों इक ठाऊँ । औषध कही कल्पनाके गाऊँ ॥
जेहि कारण नर साईं जो देई । सो सौदा जँचि काहे न लेई ॥
ठग भरमावे बहु विधि लूटे । यम धन्धासे कबहुं न छूटे ॥
मोटि अविद्या छुड़ावन लागे । झीनी महा अविद्या पागे ॥
झनी माटे दोउ कष्ट से रूपा । कारण नास्ति परे त्यहि कूपा ॥

पूरा धनी पूरा सो सौदा । परखत मेंटे कालको फन्दा ॥
संधि लखावहि कारण रोगू । मेंटहिं सब विधि संधिक सोगू ॥
नहिं सन्देह न यमके त्रासा । सदा सुखारी परख विलासा ॥
धन्य सो बूझि समुझि पग धरई । अँधरन भटकि भटकि भव परई ॥

साखी-बलिहारी तेहि पुरुषकी, पर चित परखनहार ॥
साई दीन्हों खांडको, खारी बूझ गवाँर ॥
करु बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय ॥
सो बन्दगी बहि जानदे, जहँ शब्द विवेक न होय ॥
मानुष देही पाइके, चूके अबकी घात ॥
जाइ परे भवचक्रमें, सहे घनेरी लात ॥

इति । मानुष विचारसे.

इति तृतीयखण्ड समाप्त